Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध संगीत सन्दर्भ

संगीता जायसवाल
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग,
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश– महर्षि वाल्मीकि संगीतशास्त्र के भी विद्वान् थे। उन्हें संगीत के सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान था, जिसे वे अपने काव्य रामायण में यथास्थान अत्यन्त मनोहर एवं हृदयावर्जक रूप में चित्रित किया है।

मुख्यशब्द– महर्षि वाल्मीकि, संगीतशास्त्र, रामायण,साहित्य, अमूल्य, आदिकाव्य, हिन्दू,धर्म,संस्कृत।

वाल्मीकीय रामायण भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। इसे आदिकाव्य की संज्ञा प्रदान की गई हैं मूलतः यह धर्म ग्रन्थ है, राम कथा का आकर ग्रन्थ है, और धर्म प्राण हिन्दू अद्यावधि इसका नियमपूर्वक पारायण करते हैं। किन्तु इसमें जो वर्ण्यविषय वर्णित हैं वे मात्र धर्म से सम्बन्धित नहीं हैं। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और इसे मात्र धर्म की परिधि के अन्तर्गत सीमित नहीं किया जा सकता है। ऐसी मान्यता है कि यह ग्रन्थ धर्म के विभिन्न रूपों अर्थात् वर्णाश्रम धर्म सामान्य धर्म, गार्हस्थ्य धर्म आदि का तो निरूपण करता ही है, साथ ही हमारी संस्कृति के अन्य पक्षों यथा सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था, नैतिक आदर्श, शिक्षा, साहित्य एवं कला–कौशल आदि पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। मानव जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसकी झांकी इसमें न मिलती हो अर्थात् मानव जीवन का आदर्श एवं यथार्थ दोनों ही इसमें प्रतिबिम्बित होते हैं।

रामायण महर्षि वाल्मीकि की रचना है। महर्षि वाल्मीकि संगीत के महान् आचार्य थे, तभी वह रामायण जैसा अद्वितीय संगीतमय ग्रन्थ विश्व को भेंट कर सके। रामायण कवि कलाकार की मनोहर रचना है। रामचरित्र जैसे आलौकिक विषय को एक अनूठी संगीतमय छन्दोबद्ध संवेदनशील शैली में प्रस्तुत कर महर्षि वाल्मीकि ने एक अद्वितीय कार्य किया है जो कि इतिहास में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। महर्षि वाल्मीकि की यह रचना कवि की कलात्मक, संगीतात्मक अभिरूचि की परिचायक हैं छन्दोबद्ध–ग्रन्थ पहले भी थे। यथा–मानव धर्म शास्त्र शुक्रनीति आदि, किन्तु छन्दोबद्ध रचना होते हुए भी उनमें काव्य रस नहीं था।

काव्य का रसास्वादन मानव को सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ से प्राप्त हुआ। रामायण को काव्य, इतिहास, आख्यान, चरित और कथा आदि संज्ञा प्रदान की गई है, एक ही ग्रन्थ में इतनी सारी विशेषताएँ प्रायः प्राप्त नहीं होतीं।

एक शास्त्रीय कला के रूप में संगीत के विकास पर वाल्मीकि रामायण से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। रामायण में उपलब्ध अनेक प्रसंग में हम संगीत का उललेख पाते हैं। उस संगीत के तीनों पक्षों अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य सभी का समाज के विभिन्न वर्गों में प्रचलन था। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी प्रकार के संस्कारों में, विभिन्न प्रकार के मनोरन्जनों में, अथवा विशेष समारोहों में, युद्ध के समय में, राजदरबारों में संगीत का अपना अलग ही महत्व और प्रयोजन था। शायद इसीलिए वाल्मीकि ने अपनी कृति को 'गीत ' की शास्त्रीय संज्ञा से अभिहित किया है।[1] अर्थात् उन्हें अपनी रचना को पाठ्य ही नहीं 'गेय' भी सिद्ध करना अभीष्ट था।

संगीत के इतिहास की दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि रामयाण उस वर्ग के साहित्य के अन्तर्गत आती है जो संगीत का यत्र–तत्र उल्लेख करते हैं। रामायण एक लोकप्रिय काव्य है, अतः इसमें आए संगीत उल्लेखों का महत्व और भी बढ़ जाता है। जो शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक विवरण भरत का नाट्यशास्त्र[2] देता है। उसकी व्यावहारिकता के विषय में रामायण पर्याप्त प्रकाश डालती है।

शरीर के छहों स्थानों से निकलने वाली ध्वनियों से समवेत, श्रेष्ठ छन्द में प्रणीत विचित्र पद और अर्थ से युक्त तथा द्रुत मध्य विलम्बित इन तीनों प्रमाणों से समन्वित, आयु और पुष्टि प्रदान करने वाला तथा सबके कान और मन को मोहित करने वाला यह गीतिमय महाकाव्य समकालीन रसिकमण्डलियों में भरपूर समादृत हुआ, उसकी गीति मांधुर्य आश्रमों के सरल मुनि समाज तथा नगरों के रसज्ञ पौर–समाज दोनों को समान रूप से आप्यायित करता था।[1]

किसी काव्य रचना को मनोरम गीति रूप प्रदान करने के लिए कतिपय आवश्यक नियम होते थे। वाल्मीकि ने इनका प्रसंगः उल्लेख करके भारतीय संगीत की काव्य पर निर्भरता को भी स्वीकार कर लिया हैं उनके अनुसार संगीत प्रधान काव्य में शब्दावली ''पाठये गेये च मधुरम्'' अर्थात्–पढ़ने और गाने दोनों के अनुरूप मधुर होनी चाहिए। अर्थात् वह ऐसी लचीली अक्लिष्ट और प्राज्जल होनी चाहिए कि पाठ और गान दोनों के अनुरूप हो। काव्य का संगीत ध्वनि व ताल के अनुरूप होना चाहिए। ऐसा कि सातों जातियों या स्वर समूहों में उसे बांधा जा सके। एक गीतिमय काव्य की रचना में तत्पुरूष आदि समासों दीर्घ गुण आदि संधियों प्रकृति पयर्य के सम्बन्ध का यथायोग्य निर्वाह होना चाहिए। इसमें समता (पतत् प्रकर्ष आदि दोषों का अभाव) पदों में माधुर्य तथा अर्थ में प्रसाद गुण की अधिकता होनी चाहिए। वह वीणा बजाकर स्वर और ताल के साथ गाने योग्य तथा श्रृंगारकरूण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर आदि सभी रसों से ओत–प्रात होना चाहिए। रामायण के अध्ययन से उस युग में प्रचलित संगीत के स्वरों

वर्ण और ताल इन तीनों रूपों का विशद परिचय मिलता है। स्वर संगीत आलाप प्रधान होता है। उसमें स्वर के नियंत्रण को महत्व दिया जाता है। लव–कुश को स्वर ज्ञान से सम्पन्न– ''स्वर सम्पन्नौ'' बताकर

वाल्मीकि ने स्वर संगीत के प्रचलन की ओर इंगित किया है। गीतियों की गणना इसी संगीत के अन्तर्गत की जाती थी। संगीत के इस रूप में एक या अनेक स्वरों में विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न करने हेतु वाणी या वाद्य का उतार–चढ़ाव किया जाता हैं अर्थात् स्वरों को मन्द्र मध्य अथवा तार सप्तक में बदलते रहते हैं। इस प्रक्रिया का प्रथम दर्शन ऋग्वेद के उदात, अनुदात्त एवं स्वरित स्वरों से युक्त मंत्रों में होता है। इसका सामवेदियों के हाथों बड़ा विकास हुआ वेदों में तो 'साम' संगीत का पयार्यवाची शब्द बन गया। संगीत शास्त्रों में भी कहा गया है कि सामवेद ने 'मातु' (बोल) ऋग्वेद से लिया है और धातु (स्वर) स्वयं दिया हैं अतः साम की विशेषता मंत्रों या पदों में नही है उसकी विशेषता गान या स्वर में है। जो कि संगीत के आधार स्तम्भ माने गये हैं। रामायण काल में ये सामवेदी उन्नत स्थिति पर पहुँच गये थे। दशरथ की अन्त्येष्टि के अवसर पर साम गान करने वाले विद्वान् शास्त्रीय पद्धति से साम श्रुतियों का गायन कर रहे थे।[1] दशरथ के अश्रवमेध–यज्ञ के अवसर पर पुरोहितगणों ने मन्त्रों का शास्त्रीय उच्चारण से स्निग्ध और मधुर गान किया था[2] उत्तर काण्ड में रावण को साम–स्तोत्रों से शंकर की स्तुति करते दिखाया गया है।[3] सामगान की पद्धति के प्रचार से यह सूचित होता है कि प्राचीन काल से ही जनसामान्य की शास्त्रीय संगीत के प्रति अभिरूचि थी। अभी भी विशिष्ट संस्कारों के समय सामगायन किया जाता था। जहाँ स्वरों की पूर्णता होती है उसे 'मूर्च्छना' कहते हैं। कालान्तर में स्वर–संगीत विभिन्न प्रकार की जटिल राग– रागिनियों में परिवर्तित हो गया। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि रामायण में किसी राग–रागिनी का उल्लेख नहीं है।

संगीत का दूसरा भेद 'वर्ण–संगीत ' था, जिसमें वर्णों की अर्थात् ध्वनि का प्राधान्य रहता है। यह संगीत मूलतः वर्णमाला के लघु और दीर्घ अक्षरों में विद्यमान मात्रा, ध्वनि और उच्चारण–काल के भेद त्रय पर आधारित है। वर्ण संगीत का सबसे प्रारम्भिक रूप रामायण का अनुष्टुप् छन्द है जिसके जनक स्वंय महर्षि वाल्मीकि थे। अनुष्टुप् छन्द एक तालयुक्त पद्य है, जिसमें चार समानपदों में सजे, वीणा की लय के साथ गाये जाने योग्य, सम स्वर और अक्षर वाले सुमधुर शब्दों से परिपूर्ण कोमलकान्त पदावली दृष्टिगत होती है। प्रायः सम्पूर्ण रामायण की रचना इसी अनुष्टुप् छन्द में की गई है, जिसमें लघु और दीर्घ अक्षरों का सुव्यक्त एवं नियमित आरोह–अवरोह एक विशिष्ट प्रकार के संगीत की सृष्टि करता हैं बालकाण्ड के आरम्भिक सर्गों में वाल्मीकि ने अनुष्टुप् छन्द की संगीतत्मकता पर बार–बार प्रकाश डाला है। उसे अकेले या सामूहिक रूप से भी गाया जा सकता है।

तीसरे प्रकार का संगीत 'ताल– संगीत ' है। ताल संगीत में ताल देकर गायन में गुरूत्व या आघात किया जाता है। 'तालापचराः' नामक संगीतज्ञ ताल संगीत में विशेष दक्ष माने जाते थे। यह संगीत अधिकतर नृत्यगान में प्रयुक्त होता था। क्योंकि इसमें शरीर के संगीत का तालानुसार संचालन करना होता है। प्रत्येक तालगण को इंगित करने के लिए ताली बजाने वाले ''पाणिवादकाः'' भी होते थे। करताल और स्वस्तिक जैसे वाद्यों से भी ताल दी जाती थी। वनवास से लौटने पर राम के राजकीय, जुलूस में आगे–आगे स्वास्तिक और करताल बजाने वाले चल रहे थे।[1] महर्षि भरद्वाज ने भारत और उनकी सेना के स्वागत में जो संगीत

समारोह किया था उसमें 'शाम्या' ताल देने के लिए संगीतज्ञों का एक अलग दल नियुक्त था।[2] गायकों से कला के उच्चस्तर की अपेक्षा की जाती थी जैसा कि लव–कुश की योग्यता के वर्णन से ज्ञात होता है। वे दोनों (लव–कुश) वाल्मीकि शिष्य गान्धर्व विद्या के तत्वज्ञ, स्वरों के उत्पत्ति–स्थान और मूर्च्छना के जानकार, मधुर स्वर से सम्पन्न तथा गन्धर्वों के समान सुन्दर थे। उनकी धारणा शक्ति अद्‌भुत थी– और वे वेदों में पारगत हो चुके थे। उनका उच्चारण इतना स्पष्ट था कि सुनते ही अर्थ का बोध हो जाता था। उनका रामायण गान सुनकर श्रोताओं का समस्त शरीर रोमांचित और हृदय में आनन्द की तरगे. उठने लगती। दोनों भाई –लव और कुश प्रसन्न और एकाग्रचित से वीणा की लय पर मधुर स्वर से रामायण का गान करते थे। उनका गान पूर्ववर्ती आचार्यों के बताए हुए नियमों के अनुकूल था। संगीत की विशेषताओं से युक्त स्वरों के आलापने की उनकी शैली अपूर्व थी। द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीन प्रकार की गतियों से बंधा और वीणा के स्वर से सामन्जस्य रखता हुआ उन दोनों बालकों अर्थात् लव और कुश का गायन जब आरम्भ होता, तब मधुर संगीत का तार बंध जाता। उसे सुनकर श्रोताओं की तृप्ति ही नहीं होती थी। जय–जयकार एवं उपहार देकर वे उन तरूण गायकों का उत्साह वर्धन करते थे।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार गायक की ही वाणी नहीं, वक्ता की भी वाणी अवसर के अनुकूल, उपयुक्त ध्वनि एवं स्वर से युक्त तथा ईष्ट भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ होनी चाहिए। राम ने हनूमान् के भाषण की प्रशंसा करते हुए एक आदर्श वाणी का सुन्दर वर्णन किया हैं– ''संभाषण के समय इनके मुख, नेत्र ललाट, भौंह तथा अन्य अगों से कोई दोष प्रकट नहीं हुआ।'' परवर्ती संगीत शास्त्र में मुद्रादोष नाम संगीतज्ञों का जो अवगुण बतलाया गया है प्रतीत होता है कि वह रामायण के रचनाकाल में भी दोष के रूप में देखा जाता था।

प्राचीनकाल में संगीत को 'गान्धर्व' तथा संगीतशास्त्र को 'गान्धर्व तत्व' कहते थे। उसके अन्तर्गत गीत (मौखिक गान) तथा वादित्र (वाद्यगान) दोनों समाविष्ट थे। उस युग के गायक मार्ग–शैली का आश्रय लेकर अपनी कला का प्रदर्शन किया करते थे।

संगीत के सन्दर्भ में नृत्य का भी पर्याप्त प्रचलन था। भारत में शास्त्रीय अथवा लौकिक नृत्यों का उद्‌भव भव किसी देवता–विशेष की पूजा अर्चना से हुआ बताया जाता है। इसका समर्थन उत्तरकाण्ड से होता हैं, जहाँ रावण को नृत्य और गान के साथ भगवान् शंकर की आराधना करते हुए चित्रित किया गया है।[1]

नृत्य, नृत्त और लास्य इन तीनों प्रकारों का रामायण में उल्लेख है।[2] नृत्य में विभिन्न भावों को मुद्राओं और अंग–विक्षेप या अभिनय के सहारे प्रकट किया जाता है। नृत्त में ताल और लय पर विशेष ध्यान दिया जाता है। लास्य एक प्रकार का सुकुमार नृत्य होता हैं, जिसमें गीत और वादित्र का प्रयोग होने के साथ–साथ नृत्त और नृत्य के लक्षण भी समाविष्ट किये जाते हैं। शोकाभिभूत कौशल्या के व्यवहार में नृत्य की कल्पना करके कवि ने यह बताया है कि नृत्य में अग. प्रत्यग का मृदु और गतिशील संचालन, मधुर और

ऊँचे आलाप में गायन तथा भावों का वास्तविक प्रकटीकरण किया जाता है।[1] भारतीय नृत्य कला में हृदय की भावनाओं और इच्छाओं की कलात्मक ढंग से स्पष्ट एवं व्यावहारिक अभिव्यक्ति की जाती है।

इस प्रकार यह कहा ज सकता है कि महर्षि वाल्मीकि संगीतशास्त्र के भी विद्वान् थे। उन्हें संगीत के सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान था, जिसे वे अपने काव्य रामायण में यथास्थान अत्यन्त मनोहर एवं हृदयावर्जक रूप में चित्रित किया है।

सन्दर्भ–

1. द्रष्टव्य वा0रामा0 – 2/44/44/–5।
2. द्रष्टव्य वा0रामा0–6/24/42–43।
3. द्रष्टव्य वा0रामा0– 2/1/7/अयो0।
4. वा0 रा0 1/4/17
5. देखिये नाटयशास्त्र अध्याय चतुर्थ।
6. (क) अपूर्वां पाठयजातिं च गेयेन समलङ्कृताम्।
   प्रमाणैर्बहुभिर्बद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम्। 7/1412–3!!
   (ख) आयुष्यपुष्टि जननं सर्वश्रुति मनोहरम्। 1/412–7–8,
   हलादयत्सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च। 1/4/33
7. जगुश्रच ने यथाशास्त्रं तत्र समानि सामगाः।–वा0रामा02/76/18
8. वा0रामा0–ऋष्यश्रृंगादयों मन्त्रैः शिक्षाक्षरसमन्वितैः।
   गीतिभिर्मधुरैः स्निग्धैर्मन्त्राहवानैर्यथार्हतः।।–1/14/8–9।।
9. वा0रामा0 – तुष्टाव वृषभध्वजम्। सामभिर्विविधैः
   स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः।। 7/16/33
10. ततः सतामार्ति हरं परं वरं वरप्रदं चन्द्रामयूखभूषणम्।
    समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्त चाग्रतः।। – वा0 रामा0 7/31/44
11. द्रष्टव्य वा0रामा0 – 2/20/10, 4/5/17/, 2/69/4